International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

उत्तर भारत के प्रमुख तीर्थ स्थल : एक अध्ययन

डॉ. प्रदीप सिंह[1], विजय कुमार यादव[2]

[1]असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग टी. डी. पी. जी. कालेज, जौनपुर.
[2]शोध छात्र, इतिहास विभाग टी. डी. पी. जी. कालेज, जौनपुर.

प्राचीन भारत में तीर्थों का बड़ा ही महत्व था पुराणों में तीर्थो की सूची प्राप्त होती है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण 68 तीर्थ स्थल है। वरदराजकृत 'गीर्वाणमंजरी' में भी 68 तीर्थों की एक सूची निर्दिष्ट है।[1] इसी प्रकार 108 तीर्थों की सूची भी प्राप्त है जैसा कि मत्स्यपुराण में वर्णित है।[2] देवी भागवत व स्कन्द पुराण में भी ऐसी सूची उपलब्ध है।[3] स्कन्द पुराण में ब्रह्मा के 108 स्थान वर्णित है।[4] गरूड़ पुराण में एक तीर्थ सूची है जिसमें 12 तीर्थों के नाम उल्लिखित है।[5] स्कन्द पुराण में ही शिव सम्बन्धी 12 स्थानों की सूची प्राप्त है।[6] पुराणों में तीर्थ से सम्बन्धित विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। जिसका विवरण निम्नवत् है।

प्रयाग तीर्थः–

प्रयाग (आधुनिक इलाहाबाद) के केन्द्र में स्थित है। इलाहाबाद में नैनी, प्रयाग, आइजट, ब्रिज और झूंसी प्रमुख स्टेशन है। इलाहाबाद स्टेशन से 4 मील दूर नैनी है तथा नैनी से तीन मील दूर संगम स्थित है। प्रयाग तथा त्रिवेणी संगम पर माघ मास में मेले लगते है, इसे कल्पवास भी कहते है। कल्पवास सौरमास की मंकर संक्रान्ति से कुम्भ की संक्रान्ति तक मानी जाती है तथा कुछ लोग चन्द्रमास के अनुसार माघ महीने भर ही मानते है। यहाँ प्रति बारहवें वर्ष जब बृहस्पति वृष राशि में और सूर्य मकर राशि में होते हैं तब प्रयाग में कुम्भ पर्व होता है। कुम्भ में छटे अर्द्धकुम्भ का मेला लगता है यह भी माघमास भर का होता है। प्रयाग में गंगा–यमुना का संगम है इसका उल्लेख ऋग्वेद में भी प्राप्त होता है जिसमें कहा गया कि 'जो' लोग श्वेत या कृष्ण (सित अथवा असित) दो नदियों के मिलन स्थल पर (संगम) स्नान करते हैं वे स्वर्ग को जाते हैं तथा जो व्यक्ति वहाँ प्राण त्याग करते हैं वे मोक्ष प्राप्त करते हैं[7] प्रयाग शब्द की व्युत्पत्ति अनेको प्रकार से की गयी है जिसमें स्कन्द पुराण के अनुसार प्र+याग अर्थात् 'प्रकृष्ट सर्वयागेभ्यः प्रयागमिति गीयते'। उचित प्रतीत होता है।[8] महाभारत के वनपर्व में भी ब्रह्मा जी द्वारा प्राचीन काल में यहाँ यज्ञ किये जाने का उल्लेख प्राप्त है इसी कारण 'यज्' धातु से 'प्र' उपसर्ग लगाकर प्रयाग रूप बना है।[9] पद्म पुराण ने प्रकष्टता के कारण इसे प्रयाग तथा प्रधानता के कारण 'तीर्थराज' शब्द से अभिहित किया है जो तीनों लोको में पूजति है।[10] प्रजापति का यह क्षेत्र मनुष्यों को सम्पूर्ण पापों से मुक्ति प्रदान कर स्वर्ग लाभ भी कराता है।[11] रामायण में भी प्रयाग को संगम के रूप में वर्णित करते हुए इसे 'तीर्थराज' कहा गया है।[12] महाभारतकार ने भी प्रयाग की महिमा का मण्डन किया है।[13] मत्स्य, कूर्म तथा स्कन्द पुराणों में प्रयाग प्रशस्ति गयी गयी है।[14]

गया तीर्थ :–

गया आधुनिक विहार प्रान्त में स्थित है। प्राचीन साहित्य में इसे 'गय' कहा गया है। ऋग्वेद के दो सूक्तों के रचयिता ऋषियों में एक 'प्लवित' तथा दूसरे 'गय' नाम का उल्लेख है।[15] 'अरतावी जनोदिव्योगयेन' से स्पष्ट होता है कि 'गय' नामक एक ऋषि थे।[16] अथर्ववेद में गय शब्द एक ऐन्द्रजालिक के लिए प्रयुक्त हुआ है।[17] वैदिक संहिताओं में असुरो, दासों एवं राक्षसों को इन्द्रजाल में निपुण माना जाता है, सम्भवतः वे ही आगे चलकर 'गयासुर' के रूप में परिवर्तित हो गये।[18] पुराणों में 'गया' को गयशीर्ष, 'विष्णुपद' ब्रह्मा की पूर्व वेदी, बोधिगया इत्यादि नामों से उल्लिखित किया गया है।[19] प्राचीन काल में गयासुर नाम से एक अत्यन्त पराक्रमी असुर

हुआ जिसे भगवान विष्णु ने गदा से मार डाला। अतः भगवान विष्णु को गयातीर्थ का मुक्तिदाता माना जाता है। 'वायुपुराण' के अनुसार श्वेतवाराह कल्प में 'गय' राजा ने इस स्थल पर यज्ञ किया था अतः उन्हीं के नाम पर इस क्षेत्र का नाम 'गया' पड़ा।[20] नारद पुराण के अनुसार सम्पूर्ण गया क्षेत्र का परिणाम पाँच कोश है जिसमें गया सिर एक कोस में है तथा तीनों लोकों के सभी तीर्थ इन दोनो में केन्द्रित हैं। 'वायुपुराण' ने गया को प्रेतशिला से लेकर महाबोधिवृक्ष तक विस्तृत माना है जो परिमाण में लगभग एक कोस अथवा 13 मील है।[21] क्रौंच पद से फल्गुतीर्थ तक का विस्तृत क्षेत्र गयशीर्ष है।[22] गरूड़ पुराण में भी गया का विस्तार 5 कोश तथा गयाशिर का परिमाण एक कोश वर्णित है।[23]

कुरूक्षेत्र तीर्थः–

कुरूक्षेत्र आधुनिक हरियाण प्रान्त में स्थित है। जो आधुनिक अम्बाला से 25 मील पूर्व में है। कुरूक्षेत्र की राजधानी थानेसर है। कुरूक्षेत्र समस्त मुख्य तीर्थों में शुभकारक एवं सम्पूर्ण लोंको में परम पवित्र तीर्थ है। कुरूक्षेत्र की गाथा प्राचीनकाल से ही प्राप्त होती है। ऋग्वेद में कुरू श्रवण का उल्लेख है जो त्रसदस्यु का पुत्र है। कुरू श्रवण का अर्थ है 'कुरू' भूमि में सुना गया अथवा प्रसिद्ध।[24] ब्राह्मण ग्रन्थों में कुरूक्षेत्र को अतिप्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र के रूप में उल्लिखित किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में कुरूक्षेत्र में सम्पादित उस यज्ञ का उल्लेख है जिसमें दोनो अश्विनी कुमारों को यज्ञ भाग से वंचित कर दिया गया था।[25] तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी देवताओं द्वारा यज्ञ करने का उल्लेख मिलता है। जिसमें कुरूक्षेत्र को यज्ञ वेदी के रूप में प्रयोग किया गया था।[26] प्राचीन काल में यज्ञ को अत्यधिक महत्व दिया जाता था तथा जिस स्थल पर यज्ञ कर्म सम्पादित होते थे उसे परम पवित्र माना जाता था। कुरूक्षेत्र भी ब्राह्मण काल में वैदिक संस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है जहाँ यज्ञ सम्पन्न किये जाते थे। इसी कारण इसे 'धर्मक्षेत्र' भी कहा जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम श्लोक में भी 'धर्म क्षेत्रे कुरूक्षेत्रे' शब्द आया है जहां कौरवों एवं पाण्डवों का महासंग्राम हुआ था।[27] निरूत ने कुरूक्षेत्र की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है कि 'ऋग्वेद' में देवापि एवं शान्तनु जो ऐतिहासिक व्यक्ति थे वे कुरू देश के राजा 'ऋष्टिषेण' के पुत्र थे। जिससे ज्ञात होता है कि 'कुरू' प्रसिद्ध क्षेत्र था। पाणिनी ने भी कुरूक्षेत्र की व्याकरणीय दृष्टि से व्युत्पत्ति दी है जिसके अनुसार कुरू देश में रहने वाला व्यक्ति 'कौरव्य' कहलाता है प्रथम कुरू का अर्थ है राजा एवं द्वितीय का अर्थ है 'अपत्य'[28] 'वामन पुराण' एवं नारदीय पुराण ने कुरूक्षेत्र को 'ब्रह्मावर्त्त' कहा है। इनके अनुसार सरस्वती एवं द्वषद्वती (आधुनिक घग्घर नदी) मध्य का देश कुरूजांगल था, किन्तु मनु ने उसे ब्रह्मावर्त्तदेश कहा है जिसे ब्रह्मा ने निर्मित किया था। कुरूक्षेत्र, मत्स्य, पांचाल एवं शूरसेन इत्यादि क्षेत्रों के संगठन से निर्मित ब्रह्मर्षि देश, ब्रह्मावर्त्त सर्वोत्तम देश था तथा कुरूक्षेत्र भी कुछ अंशो में ब्रह्मावर्त्त के समान था।[29] सरस्वती नदी कुरूक्षेत्र से होकर बहती थी तथा जहां यह अन्तर्हित हो गयी उस स्थान को 'विनशन' कहा जाता था जो एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थल है। आरम्भिक काल में कुरूक्षेत्र को ब्रह्मा की यज्ञीयवेदी कहा जाता रहा जो बाद में समनतपंचक में परिवर्तित हो गया।[30] पुराणों में ऐसा कहा गया है कि परशुराम ने अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए क्षत्रियों के रक्त से पाँच कुण्ड भर डाले जो कालान्तर में पितरों के आशीर्वचनों से पाँच पवित्र जलाशयों में परिवर्तित हो गये। राजा कुरू ने जब वहाँ उस भूमि को सोने के हल से सात कोस तक जोत डाला तो उन्हीं के नाम पर इस क्षेत्र का नाम कुरूक्षेत्र हो गया। वायु एवं कूर्मपुराण ने इसे कुरू–जांगल प्रदेश कहते हुए यहां श्राद्ध की विशिष्टता का सम्पादन किया है। कुरू–जांगल की राजधानी स्थाणीश्वर (थानेसर) है जो कुरूक्षेत्र का केन्द्र माना जाता है तथा आज भी धार्मिक पुण्यक्षेत्र माना जाता है। पुराणों में कुरूक्षेत्र का विस्तार पाँच योजन व्यास कहा गया है। तरन्तुक एवं कारन्तुक तथा मचक्रुक (यक्ष की प्रतिमा) एवं रामह्रदों (परशुराम द्वारा बनाये गये तालाबों) के बीच की भूमि कुरूक्षेत्र, समन्त पंचक एवं ब्रह्मा की वेदी (उत्तरी वेदी) है। इसी कारण कुरूक्षेत्र को अनेको नामों से अभिहित किया जाता है। यथा–ब्रह्मसर, रामह्रद, समन्तपंचक, विनशन, सन्निहती इत्यादि। आधुनिक विद्वान कनिंघम ने कुरूक्षेत्र की सीमा अम्बाला के दक्षिण 30 मील तक तथा पानीपत के उत्तर 40 मील तक विस्तृत माना है जो आधुनिक हरियाणा प्रदेश में स्थित है। कुरूक्षेत्र का माहात्म्य लगभग सभी पुराणों में वर्णित है। नारदीयपुराण का कथन है कि– 'ग्रहों', नक्षत्रों एवं तारागणों की कालगति के अनुसार आकाश से विस्खलन की सम्भावना है परन्तु जो मनुष्य कुरुक्षेत्र में मरते हैं वे पुनः पृथ्वी पर नहीं गिरते अर्थात् उनका पुनर्जन्म

नहीं होता है'।[31] 'जो मनुष्य सहस्रों योजन दूर से भी 'मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा, वहाँ निवास करूँगा ऐसा कहता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है'।[32] महाभारत के वनपर्व में कुरुक्षेत्र से पुनीततम स्थल कहीं भी नहीं है। इस क्षेत्र की उड़ी हुयी धूलि भी पापी को परमपद की प्राप्ति करा देती है।[3] कुरुक्षेत्र के समन्तपंचक में दया, सत्य और क्षमा आदि गुणों का उद्‌गम हुआ है। वहाँ किया जाने वाला उपवास, दान, होम, जप और देवपूजन ये सभी अक्षय भाव को प्राप्त होते हैं। महात्मा पुरूषों के पापों के शोधन के लिए ब्रह्माजी द्वारा सुखदायक एवं पुण्यदायक, कुरुक्षेत्र तीर्थ का निर्माण किया गया है।[3] नारदपुराण में कुरुक्षेत्र के लगभग सौ तीर्थों का नामोल्लेख है। जिनमें से कुछ प्रमुख अवान्तर तीर्थों का उल्लेख द्रष्टव्य है–

ब्रह्मसरोवर – यहाँ राजा कुरु सन्यासी के रूप में निवास करते थे। यह सरोवर 3546 फुट पूर्व से पश्चिम लम्बा एवं उत्तर से दक्षिण 1900 फुट चौड़ा था। अद्यतन यह कुरुक्षेत्र सरोवर के नाम से जाना जाता है।[35]
चक्रतीर्थ– यह वह स्थान है जहाँ कृष्ण ने भीष्म पर आक्रमण करने के लिए चक्र उठाया था।[36]
सप्तवन दृ इनमें काम्यकवन, अदितिवन, पुण्यदायकवन, फलकीवन, सूर्यवन, पुण्यमय मधुवन तथा सीतावन। कहीं–कहीं पुण्यदायक वन को 'व्यासवन' कहा गया है।[37]

सप्तसारस्वत अथवा सप्त नदी तीर्थ– इनमें पुण्यसलिला सरस्वती, वैतरणी, मन्दाकिनी, मधुस्रवा, दृषद्वती, कौशिकी तथा हिरण्यवती इत्यादि प्रमुख नदियाँ हैं जिनमें केवल सरस्वती प्रत्येक मास में प्रवाहित होती है शेष नदियाँ वर्षा काल में प्रवाहित होती हैं। पुण्यक्षेत्र के प्रभाव से इन नदियों में रजस्वलापन का दोष नहीं आता है। नारदपुराण में नदियों के नाम एवं क्रम में थोड़ी भिन्नता दृष्टिगोचर होती है, यथा–सुप्रभा, कांचनाक्षी, विशालाक्षी, मनोहरी, सुनन्दा, सुवेणु तथा विमलोदा।[38] ऐसी मान्यता है कि पुष्कर में ब्रह्मा द्वारा यज्ञ करते समय सुप्रभा का स्मरण किया गया था और वह प्रकट हुयी, नैमिषक्षेत्र में कांचनाक्षी स्थित है, गयाक्षेत्र में गय असुर द्वारा आहूत विशाला, उत्तरकोसल में औद्यालक के यज्ञ में आहूत मनोरमा नदी, ऋषभदेश में कुरु के यज्ञ में सुरेणु का आह्वान किया गया था, कुरुक्षेत्र में वशिष्ठ द्वारा ओघवती का आह्वान हुआ तथा जब ब्रह्मा ने हिमालय में पुनः यज्ञ किया तब विमलोदा नदी का प्रादुर्भाव हुआ।[39]

अयोध्या तीर्थः–
सरयू नदी के तट पर बसी हुई सूर्य वशं में उत्पन्न मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के वंशजों की पवित्र भूमि है। भगवान राम की अवतार भूमि होकर अयोध्या साकेत नगरी हो गयी। इसे कोशल भी कहते हैं। भगवान राम के अवसान के साथ ही अयोध्या भी समाप्त प्राय हो गयी थी परन्तु राम के पुत्र कुश ने इसे पुनः बसाया। अयोध्या के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि महाराज विक्रमादित्य ने चतुर्थ शती में इसे बसाया था। कहा जाता है कि विक्रमादित्य देशाटन करते समय संयोगाद् इस पावन भूमि में चले आये तथा इस भूमि में किंचित चमत्कार का अनुभव कर यहाँ का अन्वेषण कराया परिणामस्वरूप यह अवधभूमि सिद्ध हुयी। तत्पश्चात् विक्रमादित्य ने योगसिद्ध सन्तों के निर्देशानुसार यहाँ भगवद्‌लीलास्थलों पर मन्दिर, सरोवर, कूप इत्यादि का निर्माण कराया अयोध्या पर आततायियों के निरन्तर आक्रमणों ने इसकी प्राचीनता पर आघात किया है। आधुनिक समय में अयोध्या में प्राचीनता के नाम पर केवल अवध की पावन भूमि एवं सरयू नदी ही शेष रह गये हैं। अयोध्या को पद्‌मपुराण में कोशला कहा गया है तथा कोशलराज दिलीप, दशरथ एवं राम का वर्णन किया गया है।[40] अयोध्या की व्युत्पत्ति स्कन्दपुराण ने इस प्रकार दी है– 'अ' कार ब्रह्मा का, 'य' कार विष्णु का तथा 'ध' कार रूद्र का द्योतक है। अतएव ब्रह्मा–विष्णु–महेश का समन्वित रूप ही 'अयोध्या' है। जहाँ समस्त पातक एवं ब्रह्म हत्या जैसे महापातक भी इससे युद्ध नहीं कर सकते। इसी कारण इसे 'अयोध्या' कहा जाता है।[41] वाल्मीकि रामायण में इसे भगवान के बायें पैर के अंगूठे से उद्‌भूत पवित्र नदी सरयू के दक्षिणी तट पर स्थित बताया गया है। इसे सर्वप्रथम मनु ने बसाया था।[42] स्कन्दपुराण इसे सुदर्शन चक्र पर स्थित मानता है। भूतशुद्धितत्त्व नामक एक ग्रन्थ में अयोध्या को श्रीरामभद्र के धनुषाग्र पर स्थित कहा गया है।

मथुरा तीर्थः–

इतिहास एवं पुराण ग्रन्थों में मथुरा के चार नाम प्रसिद्ध है– मधुवन, मधुपुरी, मथुरा एवं मधुरा। (मधु नामक दैत्य को मारकर शत्रुधन ने ऋषियों को भयमुक्त किया था अतः उसी दैत्य के नाम पर इस क्षेत्र का नाम मथुरा (मथुरा) पड़ा।[43] महाभारत, आदिपर्व में कहा गया है कि मथुरा अत्यन्त सुन्दर एवं उच्चकोटि की गायों के लिए प्राचीन काल में प्रसिद्ध थी।[44] जरासन्ध के लगातार मथुरा पर आक्रमण करने से त्रस्त होकर कृष्ण यादवों समेत द्वारका में जाकर रहने लगे इससे पूर्व वे मथुरा में ही निवास करते थे।[4] मथुरा वृन्दावन, सम्पूर्ण मथुरामण्डल एवं व्रजमण्डल का प्रतीक है जिसका विस्तार 84 कोस बताया गया है। मथुरा व्रज के मध्य में स्थित है तथा सम्पूर्ण मथुरा का विस्तार 20 योजन है। मथुरा के चतुर्दिक, व्रज के तीर्थ स्थित है।[46] मथुरा के स्वामी देवता विष्णु हैं, यहाँ नागवंश के शासकों द्वारा दधिकर्ण के मन्दिर में एक प्रस्तरखण्ड के रूप में भगवान श्रीहरि की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गयी थी, मथुरा में गुप्तवंश से पूर्व नागवंश का शासन था।[47] हरिवंशपुराण में मथुरा को मध्यदेश का ककुद (अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थल) कहा गया है। यह लक्ष्मी का निवास स्थल अथवा पृथ्वी का श्रृंग है।[48] लगभग दो सहस्राब्दियों से अधिक काल तक मथुरा कृष्णपूजा एवं भागवत धर्म का केन्द्र रही है। वराहपुराण में मथुरा का माहात्म्य एवं उसके उपतीर्थों का वर्णन पाया जाता है। वराहपुराण अ. 152–178, नारदीयपुराण अ. 79–80, भागवतपुराण– 10वाँ अ. एवं विष्णुपुराण 5–6 अ. कृष्णराधा, मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन एवं कृष्णलीला के विषय में विस्तृत वर्णन उपलब्ध कराते हैं।) इस सम्पूर्ण भूलोक, पाताललोक एवं अन्तरिक्षलोक में मथुरा के समान कोई भी स्थल भगवान कृष्ण को प्रिय नहीं है।[49] मथुरा नाम उन्हें अत्यन्त प्रिय है। जब यमुना मथुरा से मिलती हैं तब मोक्षदायिनी हो जाती हैं।[50] काशी एवं प्रयाग में हजार वर्ष तक वास करने पर जो फल प्राप्त होता है वही फल मथुरा में क्षण के निवास मात्र से प्राप्त हो जाता हैं।[51] मथुरा में जन्माष्टमी, यमद्वितीया तथा ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के स्नान एवं भगवत् दर्शन का विपुल माहात्म्य है।[52] मथुरा के नाम का कथन एवं श्रवण करने वाले समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं। भूमण्डल के समस्त तीर्थ मथुरा में समाहित है। कुब्जाम्रक, सौकरव एवं मथुरा ये तीन परम विशिष्टतीर्थ हैं जहाँ श्रीहरिविष्णु गुप्तरूप में निवास करते हैं। सप्त मोक्षदायिनी पुरियों में मथुरा भी एक है।)

गंगाद्वार (हरिद्वार) :

हरिद्वार का प्राचीन नाम गंगाद्वार है। यह आधुनिक उत्तरांचल राज्य में स्थित है। यहीं पर भगीरथ की तपस्या द्वारा गंगा अवतीर्ण हुयी थीं तथा पूर्वकाल में दक्ष प्रजापति ने यहीं पर भगवान विष्णु को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ किया था।[53] इसी दक्षयज्ञ में अपमानित सती ने अपने प्राण त्याग दिये थे तथा यहीं शिवगणों द्वारा यज्ञ विध्वंस भी हुआ था।[54] पद्मपुराण में हरिद्वार को स्वर्ग के द्वार के सदृश वर्णित किया गया है। सप्तमोक्षदायिनी पुरियों में मायापुरी (हरिद्वार) के विस्तृत क्षेत्र के साथ स्मरण हो आता है। हरिद्वार को ही मायापुरी भी कहते हैं। यहाँ प्रति बारहवें वर्ष सूर्य और चन्द्र के मेष तथा वृहस्पति के कुम्भराशि में स्थित होने पर कुम्भका मेला लगता है तथा प्रत्येक छठें वर्ष अर्द्धकुम्भ का मेला लगता है। हरिद्वार को अनेक नामों से जाना जाता है, यथा– हरद्वार, गंगाद्वार, कुशावर्त, मायापुरी, कनखल, ज्वालापुर, हरिद्वार तथा भीमगोड़ा, इन (पंचपुरियों) को मिलाकर हरिद्वार का क्षेत्र बनता है।[55]

ऋषिकेश अथवा कुब्जाम्रक :

यह हरिद्वार का अत्यन्त प्रसिद्ध एवं रमणीय क्षेत्र है तथा 14 मील उत्तर में स्थित है। पुराणों में इसकी उत्पत्ति के विषय में एक कथा है जिसके अनुसार एक बार देवदत्त नामक ब्राह्मण ने यहाँ तप किया किन्तु शिव और विष्णु में भेद दृष्टि रखने के कारण इन्द्र ने प्रम्लोचा अप्सरा द्वारा उसकी तपस्या भंग करा दी। उसने पुनः तप किया। इस बार भगवान शिव ने उसकी तपस्या भंग होने का कारण बताया तथा शिव–विष्णु को एक दृष्टि से देखने का निर्देश दिया।[56] तत्पश्चात् उसके वैसा ही करने पर उसकी तपस्या का फल उसे प्राप्त हुआ। देवदत्त की पुत्री रुरु ने भी यहाँ तपस्या की तथा भगवान श्रीहरि से उसी रूप में वहाँ सदा अवस्थित रहने का वरदान भी माँग लिया फलस्वरूप भगवान वहाँ सदा के लिए विराजमान हो गये।[57] ऋषिकेश का अपर नाम कुब्जाम्रक क्षेत्र भी है। रैभ्य नामक एक मुनि ने दस हजार वर्षों तक तप करने के

पश्चात् भगवान विष्णु का हरिद्वार के उत्तर में स्थित एक आम्रवृक्ष पर आश्रय लिये हुए दर्शन किया। विष्णु के भार से वह आम्र वृक्ष कुबड़ा (कुब्जा) हो गया और इसी कारण इसका नाम कुब्जाम्रक पड़ा।[58]

हरिपदतीर्थ (हरि की पैडो) :

राजा भगीरथ द्वारा गंगा को पृथ्वी पर लाने के पश्चात् राजा श्वेत ने इसी स्थल पर ब्रह्माजी की आराधना कर उनसे वरदान स्वरूप सदा के लिए त्रिदेवों का निवास माँगा। इसे ब्रह्मकुण्ड भी कहा जाता है। यह हरिद्वार का सर्वोत्तमतीर्थ माना जाता है। हरि की पैड़ी नामकरण के पीछे भी एक कथा है कि राजा भर्तृहरि (जो सम्भवतः विक्रमादित्य के भ्राता कहे जाते थे) ने यहाँ तप करके परमपद प्राप्त किया था अतः उनकी स्मृति में विक्रमादित्य ने यहाँ एक कुण्ड बनवाया तथा सीढ़ियाँ भी बनवायी। सीढ़ियों को ही पैड़ियाँ कहा जाता है। इस प्रकार 'हरि की पैड़ी' नाम प्रसिद्ध हुआ। यहाँ स्नान करने पर भगवान विष्णु का सान्निध्य एवं मोक्ष प्राप्त होता है।[59] नारदपुराण में इसे हरितीर्थ अथवा हरिपदतीर्थ कहा गया है।[60]

काशीतीर्थः

काशी प्राचीनकाल में अविमुक्त, श्मशान एवं शिवपुरी के नाम से विख्यात थी। ऋग्वेद में एक स्थल पर कहा गया है कि प्रतर्दनऋषि काशी के राजा थे। दिवोदास की (जो कि काशी का अधिपति था) इन्द्र ने 90 नगरियाँ जीत ली थीं। इसमें अन्यत्र कहा गया है कि इन्द्र ने 100 पत्थर के नगर दिवोदास को प्रदान किये थे। शतपथब्राह्मण में सत्राजित् के पुत्र शतानीक द्वारा काशिय लोगों के पुनीत यज्ञीय घोड़े को भगा दिया गया था। अतः काशी सम्भवतः किसी जन समुदाय का नाम था। अन्यत्र धृतराष्ट्रविचित्रवीर्य को काश्म कहा गया है।[61] गोपथब्राह्मण में भी 'काशी कोशलाः' एक सामासिक पद है।[62] बृहदारण्यकोपनिषद् एवं कौषीतकिउपनिषद् में भी काशीराज अजातशत्रु का वर्णन आया है जिससे ब्रह्मज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने हेतु अहंकारी बालाकिगार्ग्य काशी आया था।[63]

वैयाकरण पाणिनी ने भी काशी शब्द का प्रयोग गणों के आदि में किया है तथो काशीयः रूप भी सिद्ध किया है। महाभाष्य में मथुरा एवं काशी में निर्मित समान परिमाण वाले वस्तुओं के मूल्य में अन्तर का उल्लेख किया गया है।[64] महाभारत के अनुशासनपर्व एवं अन्य पर्वों में भी काशी, काशीराज, काशीपति, जवह काशीपुरी, काशीनगरी इत्यादि शब्द जनपद एवं राष्ट्र के लिए प्रयुक्त हैं।[65] प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में काशी 16 महाजनपदों के अन्तर्गत परिगणित थी।[66] मत्स्यपुराण में ब्रह्मदत्त उपाधियुक्त राजाओं की राजधानी काशी को कहा गया है जिनमें 100 ब्रह्मदत्त एवं 100 काशी एवं कुश थे।[67] विष्णुपुराण में भी एक कथा है जिसके अनुसार काशीराज के द्वारा पौण्ड्रक वासुदेव (जो कृष्ण का विरोधी था) की सहायता करने के कारण श्रीकृष्ण से युद्ध हुआ था जिसमें काशीराज का वध हो गया तथा सम्पूर्ण काशी जलकर भस्म हो गयी।[68] ब्रह्माण्डपुराण ने भी काशी को अविमुक्तक्षेत्र कहा है।[69] कतिपय विद्वान् इन प्राचीन उल्लेखों के आधार पर काशी को अनार्यों का क्षेत्र एवं महादेव को अनार्यों का देवता मानते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि आर्यों के आगमन के पश्चात् भी अत्यधिक समय तक काशी अनार्यों की पूजास्थली थी।[70] काशी शब्द 'काश' अर्थात् 'प्रकाशमान' (चमकना) से बना है। स्कन्दपुराण में 'काशी' इसलिए कहा गया है कि यह निर्वाण के मार्ग में प्रकाश फैलाती है अथवा यहाँ अनिर्वचनीय ज्योति (शिव) विराजमान हैं।[71] जाबालोपनिषद् में गूढार्थ के रूप में अविमुक्त, वरणा एवं नासी शब्द आये है। अत्रि के द्वारा याज्ञवल्क्य से अनभिव्यक्त आत्मा के विषय में पूछने पर कहा कि अनभिव्यक्त आत्मा अविमुक्त में रहती है। पुनः प्रश्न हुआ कि इसका स्थान क्या है उत्तर स्वरूप कहा गया कि 'यह भौहों एवं नासिका का संयोग है अर्थात् इन दोनों के मध्य के भाग को ही अविमुक्तक्षेत्र कहा जाता है। यह वाराणसी की आध्यात्मिक व्याख्या है। नारदपुराण में अविमुक्त की आध्यात्मिक व्याख्या की गयी है जिसके अनुसार इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना नाड़ियों को ही क्रमशः वरणा, असी एवं मत्स्योदरी (गंगा) कहा गया है जिनके मध्य में अविमुक्तक्षेत्र उसी प्रकार स्थित है जिस प्रकार तीनों नाड़ियों के मध्य क्षेत्र में आत्मा स्थित रहता है।[72] अविमुक्त का अर्थ है जो त्यागा न गया हो। यहाँ विमुक्त में 'अ' निषेधात्मक 'न' का द्योतक है। नारदपुराण में 'शिवजी द्वारा इस क्षेत्र को कभी भी न त्यागने के कारण इसे अविमुक्त क्षेत्र कहा गया। इस क्षेत्र में वे सदा अपने लिंग रूप में विराजमान हैं।[73] लिंगपुराण ने अविमुक्त की व्याख्या में कहा है कि 'अवि'

का अर्थ होता है 'पाप' तथा 'मुक्त' का अर्थ 'निवारण' है। अतः पाप से मुक्त (निवारण) करने के कारण इसे अविमुक्त कहा जाता है।[74] कतिपय कारणों से इसे श्मशान अथवा महाश्मशान भी कहा जाता है। ऐसी धारणा है कि काशी संसार से मुक्ति प्रदान कराती है। इसके गंगा तटों पर यथा–मणिकर्णिका, हरिश्चन्द्र इत्यादि पर सदा शवदाह व अन्त्येष्टि–संस्कार किये जाते हैं। श्मशान को अपवित्र माना जाता है परन्तु सहस्रों वर्षों से श्मशान गंगा के परम पवित्र तट माने गये हैं। 'श्म' का अर्थ होता है 'शव' तथा 'शान' का अर्थ है 'सोना' (शयन करना)। जब प्रलयकाल आता है तब महान तत्त्व 'शव' के समान पृथ्वी पर पड़ जाते हैं। अतः यह स्थान 'महाश्मशान' कहलाता है। पद्मपुराण के अनुसार 'शिव की दृष्टि में अविमुक्त एक विख्यात श्मशान है, जहाँ वे काल (नाशक) होकर निवास करते हैं तथा विश्व का नाश करते हैं।[75] पुराणों में कहा गया है कि काशी क्षेत्र में पद–पद पर तीर्थ विराजमान हैं। यहाँ तिलमात्र भी ऐसा स्थान नहीं है जहाँ विश्वनाथ का वास न हो।[76] काशी में अनेक तीर्थ एवं उपतीर्थ है जिनका विवरण निम्नवत् है–

1. विश्वेश्वरलिंग

विश्वेश्वर काशी के प्रमुख रक्षकदेव है। इनका मन्दिर जो गोदौलिया क्षेत्र में स्थित है परम पवित्र माना जाता है। काशी में निवास करने वालों के लिए प्रतिदिन गंगा स्नान कर विश्वनाथलिंग के दर्शन का विधान है। परन्तु जब औरंगजेब ने मध्यकाल में विश्वनाथ मन्दिर को नष्ट करा दिया तो कोई सौ वर्षों तक वहाँ कोई मन्दिर न था। सम्भवतः उस समय यात्रीगण लिंग को ही यहाँ–वहाँ रखकर उसकी पूजा–अर्चना किया करते थे। आधुनिक विश्वनाथ मन्दिर अहिल्याबाई होल्कर द्वारा 18वीं शती के अन्तिम चरण में बनवाया गया है। प्रायः सभी विद्वान अविमुक्तेश्वरलिंग एवं विश्वेश्वरलिंग को एक ही मानते हैं परन्तु स्कन्दपुराण में दोनों को पृथक् माना गया है।[77]

मणिकर्णिका:

काशी का योगपीठ है 'श्मशानतीर्थ' जो मणिकर्णिका के रूप में स्थित है। इसे मुक्ति क्षेत्र भी कहा जाता है तथा यह काशी के सभी तीर्थों में सर्वश्रेष्ठ है। स्कन्दपुराण में इस तीर्थ की उत्पत्ति के विषय में एक कथा है कि विष्णु ने अपने चक्र से एक पुष्करिणी खोदी जो उनके स्वेद से भर गयी। वहीं उसके तट पर उन्होंने 5000 वर्षों तक तप किया। जिससे प्रसन्न होकर शिवजी वहाँ आये तथा प्रसन्नता के कारण अपना सिर हिलाया जिससे उनका मणियों से विभूषित कर्णभूषण पुष्करिणी में गिर पड़ा अतः इसका नाम मणिकर्णिका पड़ा। आध्यात्मिक विवेचन करने पर इसका अर्थ होगा कि शिव जो आकांक्षापूर्ति करने वाली मणि के समान है तथा जो भद्र लोगों को काशी में मरते समय उनके कान में तारक मन्त्र देते हैं वे ही मणिकर्णिका नाम से विख्यात हैं। मणिकर्णिका में ही तारकेश्वर का मन्दिर भी है। इसका विस्तार उत्तर से दक्षिण 160 फुट है। आजकल यह पुष्करिणीकुण्ड एकदम सूख गयी है जो वर्षाकाल में कुछ भर जाती है। मणिकर्णिका में कुल सात करोड़ शिवलिंगों की स्थिति मानी गयी है।[78]

3. दशाश्वमेध

प्राचीन समय से ही दशाश्वमेध घाट अति प्रसिद्ध रहा है क्योंकि यहाँ भार शिव सम्राटों द्वारा दस अश्वमेधयज्ञ सम्पन्न किये गये थे। इसी कारण इसका नाम भी दशाश्वमेध पड़ा। स्कन्दपुराण के अनुसार इसका अति प्राचीन नाम रुद्रसर था तथा ब्रह्मा के द्वारा दश अश्वमेधयज्ञ करने के कारण दशाश्वमेध हुआ है।[79]

4. पंचगंगाघाट

यह पाँच नदियों– किरणा, धूतपापा, गंगा, यमुना एवं सरस्वती का संगमस्थल है इसमें स्नान करने वाला व्यक्ति पुनः पांचभौतिक शरीर नहीं धरता।[80] माघमास में प्रयाग स्नान के बराबर यहाँ का एक दिन का स्नान होता है। इस पंचनदतीर्थ में पितरों का श्राद्ध भी किया जाता है।[81]

5. काशी पंचक्रोशी यात्रा

पंचक्रोशी की यात्रा अत्यन्त पुण्यदायिनी मानी जाती है। इसका विस्तार लगभग 50 मील है तथा इस पर अनेक पुण्यकारी तीर्थ स्थित हैं। इस यात्रा का प्रारम्भ मणिकर्णिका से होता है जो वाराणसी के चारों ओर पाँच कोस के व्यास में टेढ़ा–मेढ़ा अर्धवृत्त बनाता है। इसी कारण इसे पंचक्रोशी कहा जाता है।[82] पंचक्रोशी यात्रा आग्रहायण (मार्गशीर्ष) एवं फाल्गुनमास (अधिमास) में प्रारम्भ होती है। सर्वप्रथम मणिकर्णिका में स्नान कर विश्वनाथ का दर्शन किया जाता है वहाँ से खण्डवा जाते हैं जो मणिकर्णिका से 6 मील दूर है। यहाँ कर्मदेश्वर का प्रसिद्ध मन्दिर है। यह प्रथम पड़ाव है। दूसरे दिन धूपचण्डी नामक ग्राम में पड़ाव होता है, तृतीय पड़ाव 14 मील दूर रामेश्वर ग्राम में होता है। चौथा पड़ाव उससे 8 मील दूर शिवपुर में होता है जिसे पाँचों पण्डवा भी कहते हैं। पाँचवे दिन 6 मील दूर कपिल धारा में पितरों का श्राद्ध किया जाता है तथा छठें एवं अन्तिम दिन पुनः मणिकर्णिका पहुँचकर स्नान किया जाता है तथा विश्वनाथ का दर्शन कर पुरोहितों को दान–दक्षिणा देकर यात्रा समाप्त की जाती है। साक्षी विनायक का दर्शन अनिवार्य है क्योंकि वे ही इस सम्पूर्ण पंचक्रोशी यात्रा के साक्षी होते हैं। यात्रा के समय यात्री कपिल धारा से मणिकर्णिका तक यव (जौ) छींटता चलता है।

6. ज्ञानवापी

यह विश्वेश्वरलिंग के पार्श्व में ही स्थित है। जो एक कुण्ड के रूप में है। जब ईशान (शिव) को स्वयं विश्वेश्वरलिंग को शीतल जल से स्नान कराने की इच्छा हुई तो उन्होंने विश्वेश्वर से दक्षिण में त्रिशूल से एक कुण्ड खोद डाला और उन्हें स्नान कराया। तब विश्वेश्वर भगवान ने इसे सर्वश्रेष्ठतीर्थ का वरदान दे डाला। शिवजी स्वयं ज्ञानरूप हैं उनके द्वारा प्रतिष्ठापित होने से यह कुण्ड ज्ञानोद अथवा ज्ञानवापी कहलाया।[83] इसके अतिरिक्त अन्य अवान्तरतीर्थ भी हैं जिनके अन्तर्गत कृत्तिवासेश्वर लिंग, मणिकर्णीश्वर, अविमुक्तेश्वर, कपदमश्वर, चतुर्थेश्वर, मध्यमेश्वरादि प्रतिष्ठित लिंग भी तीर्थ रूप में पूजित हैं। कपदमश्वरलिंग का जो मन्दिर है उसी के समीप विमलोदककुण्ड है जिसमें एक पिशाच ने स्नान किया तथा वह प्रेतत्त्व से मुक्त हो गया। तभी से उस कुण्ड का नाम पिशाचमोचन पड़ गया।[84] यहाँ पितरों का श्राद्ध एवं पिण्डान किया जाता है। कपालमोचनतीर्थ का भी वर्णन होता है जो मत्स्योदरी (मछोदरी) के समीप स्थित है तथा गुह्यकों का तीर्थ माना जाता है। इसी प्रकार कोटि तीर्थ व कालेश्वरतीर्थ भी हैं जो नागों एवं पिशाचों का तीर्थ स्थल है जहाँ श्राद्धकर्म एवं पिण्डदान किया जाता है।[85] काशी में पवित्र कूप, सरोवर, बावड़ी नदी एवं कुण्ड भी स्थित हैं जो सिद्धपीठ के रूप में प्रसिद्ध हैं जिनमें कपिलाह्रद, भ्रददोह, धर्मकुण्ड, धूली, गोप्रेक्ष क्षेत्र इत्यादि सम्मिलित है।

गोनिष्क्रमणतीर्थः

यह तीर्थ हिमालय के शिखर में स्थित है। यहीं समुद्र से निकलकर सुरभि गाएँ आयी थीं। और्वनाभ नामक ऋषि ने निष्काम भाव से तप किया था तथा इन्हीं के शाप से दग्ध शिव की शान्ति के लिए विष्णु ने इस स्थल पर सतहत्तर सुरभि गायों को स्वर्ग से उतारा एवं उनके दूध से सिक्त हो जाने पर रुद्र समेत समस्त जीवों की जलन शान्त हो गयी तब से उस स्थल का नाम 'गोनिष्क्रमणतीर्थ' हो गया।[86]

विस्तार :

यह क्षेत्र पाँच योजन में विस्तृत है यहाँ गंगा पश्चिम वाहिनी हैं। यह स्थल सम्भवतः ऋषिकेश के ऊपर व्यासघाट से कुछ दूरी पर है।

माहात्म्य :

यह स्थल परमश्रेष्ठ, मंगलों में परम मंगल, लाभों में परमलाभ एवं धर्मों में उत्तम धर्म को प्रदान करने वाला है।[87]

अवान्तरतीर्थ : यहाँ के अवान्तरतीर्थों में मूलवट नामक पंचधारा, पंचपद, ब्रह्मपद, कोटिवट, पंचक्रोश इत्यादि प्रमुख हैं।[88]

शालग्राम क्षेत्रः

वर्तमान नेपाल की राजधानी काठमाण्डू से 140 मील पश्चिम में स्थित गुल्मी जिले में कृष्णा–गण्डकी के मुहाने पर स्थित कुरुक्षेत्र को ही शालग्राम क्षेत्र कहा जाता है। इसका अपरनाम मुक्तिनाथ क्षेत्र भी है। यहाँ भगवान विष्णु शिलारूप में विराजमान हैं। कतिपय विद्वान नेपाल के पशुपतिनाथ को ही शालग्रामक्षेत्र मानते हैं। किन्हीं स्थलों पर इसे त्रिवेणी नाम से भी कहा गया है। त्रिवेणी में तीन स्थलों का समावेश है यथा– मुक्तिनाथ (नेपाल), पिण्डारक क्षेत्र (द्वारका से 20 मील दूर जामनगर जिले में स्थित) तथा लोहार्गल (लोहागार) क्षेत्र (राजस्थान के नवलगढ़ से 20 मील दूर स्थित)।[89] परन्तु नन्दलाल डे नामक विद्वान इसे हिमालय की तलहटी में कूर्माचल (कूमायूं) के अन्तर्गत चम्पावत से 3 मील उत्तर लोहाघाट नामक स्थान मानते हैं।[90] पद्मपुराण में भी शालग्राम क्षेत्र का उल्लेख किया गया है जिसमें इसे मुक्तिनाथ क्षेत्र ही कहा गया है। मुक्तिनाथ 51 शक्तिपीठों में से एक है जहाँ शती का दाहिना गण्डस्थल गिरा था।[91] वराहपुराण में इसे सिद्धवट से 30 योजन दूर हिमालय पर म्लेच्छों के मध्य का स्थल माना गया है। यह परमगुह्य स्थान है जो पन्द्रह आयाम में चारों और पाँच योजन तक विस्तृत है।[92] शालग्राम क्षेत्र में भगवान शिव सोमेश्वरलिंग एवं त्रिजलेश्वर के रूप में स्थित हैं तथा भगवान विष्णु शिला रूप में विराजमान हैं। वहाँ समस्त शिलायें विष्णु रूप ही हैं जिनमें शिवनाभा एवं चक्रनाभा प्रमुख हैं।[93] यहीं पर सोम द्वारा तप करने पर शिव ने उसे शापमुक्त किया था।[94] शालग्राम क्षेत्र में रेवा एवं गण्डकी नदियों ने सूखे पत्ते खाकर कठिन तप किया था। फलस्वरूप भगवान विष्णु शिला रूप में उन नदियों के गर्भ में विराजमान हो गये।[95] इस शालग्राम शिला के माहात्म्य के विषय में गरुड़पुराण का कथन है कि– शालग्रामशिला सहित द्वारिकादि सप्त पुरियाँ, नैमिष, पुष्कर, गया, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, सूकरक्षेत्र, गंगा, नर्मदा, चन्द्रभागा, सरस्वती, पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ) तथा उज्जयिनि से समस्त तीर्थ पापों के विनाशक एवं मुक्ति प्रदाता हैं।[96] प्रसिद्ध गण्डकी नदी भी इसी क्षेत्र में है। पुराणों का कथन है कि भगवान विष्णु के हिमालय में तप करने पर उनके कपोल (गण्डस्थल) से पसीने के रूप में दिव्य गंगा प्रवाहित हुयीं जिनका नाम गण्डस्थल से निकलने के कारण गण्डकी हुआ। इस पवित्र नदी में विष्णु सहित शिव, ब्रह्मा एवं समस्त देवता, ऋषि, यज्ञ एवं तीर्थ स्थित हैं अतः यह तीर्थों में परमतीर्थ एवं मंगलों में परम मंगल है।[97] गजेन्द्रमोक्ष की कथा भी गण्डकी से ही सम्बन्धित है, इसी नदी में ग्राह द्वारा गज को पकड़ लिया गया था तथा गज की प्रार्थना पर भगवान विष्णु ने उसे संकट से छुड़ाया था।[98]

गंगा तीर्थ :–

गंगा पृथ्वी पर सम्पूर्ण तीर्थों में सर्वश्रेष्ठ मानी जाती हैं। जो सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाली अद्वितीय नदी हैं। गंगा के पवित्रतम तट पर अनेकानेक पुण्यतमतीर्थ स्थित हैं जिनमें हरिद्वार, प्रयाग, कनखल, काशी इत्यादि तीर्थ प्रमुख है। गंगा का माहात्म्य नारदपुराण के उत्तरार्द्ध, अध्याय 38–48 एवं 51/1–48 तक, पद्मपुराण के उत्तरखण्ड, अ. 21, 82 एवं सृष्टिखण्ड के अ. 60 में विस्तृत रूप में वर्णित है। स्कन्दपुराण के काशीखण्ड अ. 29/17–168 में गंगा के एकसहस्र नामों का उल्लेख है। भारतीय परम्परा में दृश्य संसार के समस्त पदार्थों के दो स्वरूप विद्यमान हैं प्रथम भौतिक एवं द्वितीय आध्यात्मिक। गंगादि पवित्र नदियों में दैवी जीवन की कल्पना की गयी है तथा उनके जल के सेवन से प्राणिमात्र जीवन्त एवं मुमुक्षु हो जाता है। पुराणों में ऐसा कहा गया है कि जिन देशों, जनपदों, पर्वत, आश्रमों के समीप से पुण्यसलिला गंगा प्रवाहित होती हैं वे सभी क्षेत्र सिद्ध एवं पवित्र हैं।[99] तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, दान इत्यादि सत्कर्मों के द्वारा प्राप्त होने वाला फल गंगा के सेवन मात्र से प्राप्त हो जाता है। गंगा के जल की विशेषता बताते हुए उसे सुस्वादु एवं रोगनाशक औषधि कहा गया है। जो भक्तिभाव से गंगाजल का स्पर्श अथवा पान करता है वह अनायास ही मोक्ष का भागी बन जाता है।[100] विष्णुपुराण में कहा गया है कि गंगा विष्णु के बायें पैर के अंगुठे के नख से निःसृत हैं।[101] पद्मपुराण ने गंगा को मन्दाकिनी के रूप में स्वर्ग में, गंगा के रूप में पृथ्वी पर तथा भोगवती के रूप में पाताल में प्रवाहित कहा है।[102] वराहपुराण ने गंगा की व्युत्पत्ति 'गां गता' अर्थात् जो पृथ्वी की ओर गयी हो की है।[103] गंगा विष्णु के गाँव से प्रवाहित एवं शिव के जटाजूट में स्थित मानी गयी हैं।[104] जहाँ से सर्वप्रथम वे सीता, अलकनन्दा, सुचक्षु एवं भद्रा नामक चार विभिन्न धाराओं में बहती हैं, अलकनन्दा दक्षिण की ओर से बहती हुई भारतवर्ष की ओर आती हैं तथा सप्तमुखों से होकर समुद्र में गिरती हैं। वैसे तो गंगा

सभी स्थलों पर सुलभ हैं परन्तु गंगा द्वारा (हरिद्वार), प्रयाग एवं जहाँ गंगा समुद्र में मिलती हैं अर्थात् गंगा सागर में पहुँचना अत्यन्त दुष्कर है इसके अतिरिक्त कुशावर्त, विन्ध्यपर्वत, नीलगिरि और कनखल इन महातीर्थों में जो व्यक्ति स्नान करता है उसका पुनर्जन्म नहीं होता है।[105] गंगा को विष्णु का प्रतिनिधि माना जाता है तथा ऐसा भी कहा जाता है कि सर्वव्यापी, चिन्मयस्वरूप भगवान जनार्दन विष्णु ही द्रवरूप से गंगाजी के जल हैं।[106] भगवान सूर्य से भी गंगा को औषधीय वरदान प्राप्त है। श्रीमद्भगवद्गीता में गंगा को साक्षात् भगवद्रस्वरूप कहा गया है। सत्ययुग में सभी तीर्थ उत्तम थे, त्रेतायुग में पुष्करतीर्थ सर्वोत्तम है द्वापर में कुरुक्षेत्र की विशेष महिमा है तथा कलयुग में गंगा ही सर्वश्रेष्ठ हैं, क्योंकि कलियुग में सभी तीर्थ स्वभावतः अपनी–अपनी शक्ति गंगा में छोड़ जाते हैं परन्तु गंगा जी अपनी शक्ति कहीं नहीं छोड़ती।[107] कतिपय पुराणों ने गंगा के स्थल विशेष की भी चर्चा की है यथा गंगा के तीर से एक गव्यूति तक को क्षेत्र कहा जाता है, इस क्षेत्र के अन्तर्गत ही निवास करना चाहिए गंगा तीर पर नहीं। क्षेत्र सीमा दोनों तीरों से एक योजन की होती है अर्थात् प्रत्येक तीर से दो कोस तक क्षेत्र का विस्तार होता है।[108] ब्रह्मपुराण ने नदियों के चार हाथ की दूरी तक नारायण का स्वामित्व माना है तथा मरणकाल में भी उस क्षेत्र में दान नहीं लेना चाहिए। गंगा के गर्भ, तीर एवं क्षेत्र में अन्तर प्राप्त होता है। 'गर्भ' वहाँ तक विस्तृत कहा जाता है जहाँ तक भाद्रपद के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तक धारा पहुँच जाती है। उससे आगे का क्षेत्र 'तीर' कहलाता है जो गर्भ से 150 हाथ तक फैला हुआ रहता है। प्रत्येक तीर से दो कोस तक 'क्षेत्र' विस्तृत रहता है। 'गव्यूति' दूरी अथवा लम्बाई का माप है जो सामान्यतः दो क्रोश (कोस) के बराबर है। वायुपुराण एवं ब्रह्माण्डपुराण ने 24 अंगुल का एक हस्त, 96 अंगुल का एक धनु (दण्ड), 2000 धनु का 1 गव्यूति तथा 8000 धनु का एक योजन माना है। मार्कण्डेयपुराण ने 4 हस्त को एक धनु, 2000 धनु को एक कोस तथा 4 कोस को एक गव्यूति माना है जो लगभग दो योजन है।[109] गंगा की अन्य नदियों से श्रेष्ठता सिद्ध करते हुए कहा गया है कि सरस्वती का जल तीन मास में, यमुना का जल सात मास में, नर्मदा का जल दस मास में तथा गंगाजी का जल एक वर्ष में पचता है अर्थात् इतनी अवधि तक गंगा जल का प्रभाव शरीर में विद्यमान रहता है।[110] गंगा में स्नान एवं गंगा जल का पान कर व्यक्ति अपने कुल के सात पीढ़ियों को पवित्र कर देता है।[111] गंगा का पौराणिक स्वरूप अत्यन्त रमणीय है यथा इनकी चार भुजाएँ हैं जिसमें एक हाथ में रक्तमय कलश दूसरे में श्वेत कमल, तीसरे में वर तथा चौथे में अभय लिये हुए हैं। इनके तीन नेत्र हैं तथा ये सम्पूर्ण अंगों से सुशोभित हो श्वेतवस्त्र धारण किये हुए हैं। ये परमसुन्दरी, सदा प्रसन्नचित्त एवं करूणा से आर्द्र रहती हैं। गंगा के पूजित होने पर समस्त देवता पूजित होते हैं।[112] गंगा में स्नान करते समय 'नमोनारायणाय' का उच्चारण करना चाहिए। गंगा का आह्वान करते हुए उनके विभिन्न नामों का भी उच्चारण करना चाहिए यथा नन्दिनी, नलिनी, दक्षा, पृथ्वी, विहगा, विश्वकाया, अमृता, शिवा, विद्याधरी, सुप्रशान्ता, शान्तिप्रदायिनी।[113] तीनों लोकों की शान्ति, देवों, ऋषियों एवं पितरों की तृप्ति के लिए गंगा में तर्पण अवश्य करना चाहिए।[114] एक मात्र गंगा की भक्ति से व्यक्ति को स्वर्ग, निर्मल ज्ञान, योग तथा मोक्ष प्राप्त हो जाता है। मरने पर भी जिस व्यक्ति के अस्थियों का गंगा जल से संयोग हो जाता है तो उसे स्वर्ग में वास मिलता है। गंगा अत्यन्त उदार प्रकृति की हैं वे परित्यक्त, पापी, पतित, चाण्डाल एवं गुरुघाती, आत्मघाती सभी प्रकार के प्राणियों का उद्धार कर देती हैं।[115] गंगा में अस्थिविसर्जन की परम्परा सम्भवतः सगरपुत्रों के तरने के पश्चात् ही प्रचलित हुयी होगी। नारदीयपुराण के अनुसार भस्म एवं अस्थियों के अतिरिक्त नख एवं केश डालने पर भी व्यक्ति का कल्याण हो जाता है।[116] अस्थिविसर्जन के समय उन पर पंचगव्य छिड़ककर, सोने का एक टुकड़ा रखकर, मधु एवं तिल सहित उसे किसी मिट्टी के पात्र में रखकर दक्षिणदिशा में देखते हुए धर्म को नमस्कार कहकर गंगा में प्रवेशकर धर्म मुझसे प्रसन्न हों कहकर अस्थियों का विसर्जन कर देना चाहिए। तत्पश्चात् स्नान कर सूर्य दर्शन करना चाहिए तथा किसी ब्राह्मण को दान देना चाहिए।[117] गंगा तट पर खड़े होकर अन्य दूसरे तीर्थों की प्रसंशा नहीं करनी चाहिए।[118] गंगा में विशिष्ट तिथियों में स्नान करने से विशिष्ट फल की प्राप्ति होती है। यथा– अमावस्या, संक्रान्ति, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण इत्यादि पर स्नान सहस्रगुना फलदायक होता है।[119] गंगा तट पर मन्दिर इत्यादि तथा घाटों एवं सीढ़ियो के निर्माण कराने से अन्य तीर्थों से कोटि गुणा फल प्राप्त होता है। गंगातट पर गोदान करने से गाय के शरीर के रोम के बराबर वर्षों तक स्वर्गलोक का वास मिलता है। इसी कारण गंगा को सर्वश्रेष्ठ नदी कहा गया है।[120] आधुनिक काल में वैज्ञानिकों ने भी गंगा के जल की

गुणवत्ता सिद्ध की है। गंगा जल को किसी बन्द उपकरण में रख देने पर भी वर्षों तक उसमें कीड़े नहीं पड़ते हैं और वह शुद्ध ही बना रहता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. लिंग पुराण 12/139 एवं कूर्म पुराण– अध्याय 35 से अध्याय 37
2. मत्स्य पुराण अध्याय 13
3. देवी भागवत पुराण– 8/30/55–33 स्कन्द पुराण रे0ख0–198/64–91
4. स्कन्द पुराण 105/74–96
5. गरूड़ पुराण–1/81
6. स्कन्द पुराण–1/3/15/6–80
7. सितासिते सरिते यत्र सङ्गते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति। ये वै तन्वं विसृजन्ति भीरास्ते जनासो अमृतत्त्वं भजन्ति।। ऋग्वेद– 10/75
8. स्कन्द पुराण काशी खण्ड 7/46
9. महाभारत वन पर्व 87/18, 19
10. एवं सर्वेषु लोकेषु प्रायगः पूज्यते बुधैः। पूज्यते तीर्थराजश्च सत्यमेतद्युधिष्ठिर। पद्म पुराण सृष्टि खण्ड 46/15 एवं 6/23/27–35
11. पद्म पुराण 41/12, 14,5
12. वाल्मीकि रामायण 2/54–6
13. महाभारत वन पर्व 85/97, 87/18–20
14. मत्स्य पुराण 103/112, कूर्म पुराण 1/36–39, स्कन्द पुराण का. 7/45/65
15. ऋग्वेद 10/63 एवं 10/64
16. ऋग्वेद 10/63 एवं 10/64/17,
17. अथर्ववेद 1/14/4
18. ऋग्वेद 7/99/4, 7/104/24, 25 एवं अथर्ववेद 4/23/5
19. नारद पुराण 46/16, विष्णु पुराण 22/20
20. वायु पुराण 105/7, 8, गरूड़ पुराण 82/2, 6
21. वायु पुराण 105/29, वायु पुराण 22/20, नारद पुराण 44/16
22. नारद पुराण उ. 46/16, गरूड़ पुराण 1/82–86
23. गरूड़ पुराण 83/3
24. ऋग्वेद 10/33/4
25. शतपथ ब्राह्मण 4/1/51/3
26. तैत्तरीय ब्राह्मण 5/1/1
27. श्रीमद्भागवत गीता 1/1
28. निरूक्त 2/10, ऋग्वेद 10/98/5, 7
29. सरस्वती दृषदृतीदृषद्वत्योरन्तरं सरस्वतीदृषदृत्योर्देववनद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मित देशं ब्रह्मावर्त प्रचक्षते।। कुरूक्षेत्रं च मत्स्याश्च पंचालाः शूरसेनकाः। एष ब्रह्मर्षिदेशों वै ब्रह्मावर्तादनन्तरः।। वायु पुराण–22/47 एवं नारद पुराण 64/4
30. पद्म पुराण 4/17/7 एवं वायु पुराण 22/18–20
31. महाभारत, वन पर्व 85/88
32. नारद पुराण 64/60
33. नारद पुराण उ. 65/95
34. वायु पुराण 425, 57/89

35. नारद पुराण 65/4–7 एवं वायु पुराण 34/3
36. कृतेयुगे पुष्कराणि त्रेतायां नैमिषंस्मृतम्। द्वापरे च कुरूक्षेत्रं कलौगड्.गां समाश्रयेत्।। पद्म पुराण सृष्टि खण्ड 34/22
37. पद्म पुराण सृष्टि खण्ड 43/160–163
38. सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ब्रह्मज्ञेष्विव सर्वेषु शम्भुर्गड्.गा नदीष्विव।
    अद्य प्रभृति में विप्रास्तीर्थमेतदनुत्तमम्। दक्षिणाकोशलेत्युच्चैर्नाम्नाख्यातं भविष्यति।।
    यत्र दाशरथी भूत्वा निहनिष्यामि रावणम्। सा कथ्यते मुनिवरैः सर्वैरूत्तरकोशला। विपन्नोज्ञानवान्यस्यां बैकुण्ठमधिरोहति।
    विनाऽपितद्वसेद्योऽस्यां सोऽपि स्वर्गं च गच्छति।।
    पद्म पुराण 202/2–3, 212/23–28
39. स्कन्द पुराण– आदि खण्ड 6/178
40. यत्र प्रयागराजोऽपि स्नातुमायाति कार्तिके। शुद्धयर्थं साधुकोमोऽसौ प्रयागो मुनि सत्तम्।। नारद पुराण 75/71 अयोध्या खण्ड 6/182
41. वामन पुराण 88/185
42. महाभारत आदि पर्व 221/46
43. महाभारत शान्ति पर्व 14/49:50 एवं 67
44. विंशतिर्योजनानां तु माथुरं परिमण्डलम्। तन्मध्ये मथुरा नाम पुरी सर्वोत्तमोत्तमा।। नारद पुराण 79/20–21
45. विष्णु पुराण 6/8/31 एवं वायु पुराण 19/382–83
46. हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण 59/2, 3
47. वराह पुराण 152/8–9
48. हरिवंश पुराण, पृ0सं0 47–48
49. वराह पुराण 170, पद्म पुराण 69/63, नारद पुराण 75–80
50. प्रदक्षिणीकृत्ये येन मथुरायां तुम केशवः। प्रदक्षिणिकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा।।– वराह पुराण 158–8 एवं 159/14
51. यत्रभूमिमनुप्राप्ता भगीरथानुगा श्रीगंगालकनन्दाख्यानगान्भित्त्वासहस्रशः।
    नारद पुराण उ. 66/4 तथा यत्रायजत यज्ञेशं पुरादक्षः। नारद पुराण 66/5, 20
52. तत्क्षेत्र पुण्यदं नृणां सर्वपातकनाशनम्। प्राणंस्तत्याज तन्वंगी तज्जातं क्षेत्रमुत्तमम्।। नारद पुराण 66/13
53. पद्म पुराण 28/29, 30
54. मामेवावेहि विष्णुं त्वं मा पश्यस्वान्तरं मम्। आवामेकेन भावेन पश्यंस्त्वं सिद्धिमाप्स्यसि।। पूर्वमन्तरभावेन दृष्टवानसि यन्मम्। तेन विघ्नोऽभवद् येन
    गलितं त्वत्तपो महत्।। वराह पुराण 146/56–57
55. वराह पुराण 126/88–96
56. गरूड़ पुराण उ. 39/5–6
57. भीमस्थलं ततः प्राप्ययः स्नायात्सुकृतीनरः। नारद पुराण उ. 66/42, 51
58. एतदेव तपः स्थानमेतदेव जपस्थलम्। एतदेव हुतस्थानंयत्र गंगाभुवं गता।। नारद पुराण 66/44–45
59. ऋग्वेद 10/179/2
60. नारद पुराण 12/42–43
60. शतपथ ब्राह्मण 13/5/4/21
62. गोपथ ब्रह्मण, पू.भा. 2/9
63. वृहदारण्यक उपनिषद 2/1/1 एवं कौषीतकी उपनिषद 4/1
64. महाभारत, भाग–2 पृष्ठ सं0–413

65. महाभारत, अनुशासन पर्व अध्याय 30
66. महापरिनिब्बानुसुत्त एवं महासुदस्सनसुत्त, सैक्रेडबुक्स आवादि ईस्ट, जिल्द–11, पृष्ठ सं0–99 एवं 247
67. मत्स्य पुराण 273/72–73
68. विष्णु पुराण 5/24/14, 15, 24–30, 41–43
69. पद्म पुराण आदि खण्ड 3/37, नारद पुराण उ. 48/71, लिंग पुराण 93–190 स्कन्द पुराण काशी खण्ड 6
70. स्कन्द पुराण, काशी खण्ड 26/34, पद्म पुराण आदि खण्ड 33/49
71. स्कन्द पुराण, काशी खण्ड 26/67
72. वरणासिर्नदी यावदसिः शुष्कनदी शुभे। पिंगला नाम यत्तीर्थ आग्नेयी सा प्रकीर्त्तिता। शुष्का सरिच्य सा श्रेया लोलार्को यत्र तिष्ठति।।
इड़ा नाम्नी तु या नाड़ी या सौम्या संप्रकीर्तिता। वरणा नाम सा ज्ञेया केशवो यत्र संस्थितः।
आभ्यां मध्ये तु या नाड़ी सुषुम्ना सा प्रकीर्तिता। मत्स्योदरी च सा ज्ञेया विस्वरं तत्प्रकीर्तितम्।।– पद्म पुराण, 33/49,50 एवं नारद पुराण 49/19–23.
73. विमुक्तं न कदा यस्मान्मोक्ष्यते न कदाचन। महाक्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिदं स्मृतम।। नारद पुराण 48/24
74. लिंग पुराण 48/14
75. तत् प्राप्य म्रियते क्षेत्रे पुनरजन्म न विद्यते। अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका। पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैतामोक्षदायिकाः।।– गरूड़ पुराण 38/5–6
76. स्कन्द पुराण, काशी खण्ड 51/1/8
77. स्कन्द पुराण, काशी खण्ड 10/9/93
78. स्कन्द पुराण काशी खण्ड 26/51–62 एवं 26/66
79. स्कन्द पुराण काशी खण्ड 52/66–68
80. किरणाधूतपापा च पुण्यतोया सरस्वती गंगा च यमुना चैव पंचनद्यः प्रकीर्तिताः।– नारद पुराण 51/15–16.
81. स्नात्वा पंचनदे तीर्थे कृत्वा च पितृतपर्णम्। श्रद्धयायैः कृतं श्राद्धं तीर्थे पंचनदे शुभे।।– नारद पुराण 51/19–21.
82. स्कन्द पुराण, काशी खण्ड 26/80 एवं 114 तथा 55/44
83. स्कन्द पुराण, काशी खण्ड 33/32
84. स्कन्द पुराण, काशी खण्ड 38/40
85. स्कन्द पुराण, काशी खण्ड 9/10/92
86. जनकस्य तु राजर्षेः कूपस्त्रिदशपूजितः तत्राभिषेकं कृत्त्वा तु विष्णुलोकमवाप्नुयात्।। वामन पुराण 163/2 मिथिलायां पुरीरम्या जनकेन च पालिता। मिथिलावासिनो लोकास्तीर्थ यात्रां समागताः।।– पद्म पुराण. 38/31
87. वराह पुराण 147/5, 8, 28, 30
88. वराह पुराण 148/58–59
89. वराह पुराण 149/33, 35, 40, 44, 45
90. कालात्मना निवसता यदुदेवगेहे। पिण्डारकं समगमन् मुनयो निसृष्टाः।।, भागवत पुराण 11/1/11 एवं 5/7/8.
91. पद्म पुराण पा.ख. 78
92. वराह पुराण 143/182–83 एवं 151–7–8
93. वराह पुराण 144/183, 143/16

94. सोमेन तत्र संस्थाप्य स्वनाम्ना लिंगमुत्तमम्। वर्षाणां तु सहस्रं वैस्वशापस्य निवृत्तये।।
ततः शापाद्विनिर्मुक्तः तेजसा च परिप्लुतः।।– वराह पुराण 144/17–18
95.गण्डक्यापि पुरा तप्तं वर्षाणामयुंत विधो।–वराह पुराण 144/39–40, 61,62
96. शीर्णपर्णाशनं कृत्वा वायुभाप्यनन्तरम्। शालग्रामशिलारूपी तवगर्भगतः सदा।– गरूड़ पुराण 66/6–8
97. मुक्ति क्षेत्रमिददेवदर्शनादेवमुक्तिदम्।
गण्डस्वेदोद्भवायत्रगण्डकीसरितांवरा।– वराह पुराण 144/144–124
98. पद्म पुराण 1/27/39
99. नारद पुराण, उ. 38–8
100. किमष्टांगेनयोगेन किं तपोभिः किमध्वरैः। वा सएवहि गंगायोसर्वतोपि विशिष्यते।। पद्म पुराण 5/60/39, नारद पुराण, 38/38
101. नारद पुराण उ. 38/51–53
102. नदी सा वैष्णवी प्रोक्ता विष्णु पादसमुद्भवा।– विष्णु पुराण 2/8/109, पद्म पुराण 5/25/188
103. तासां मध्ये एकाशीतिसहस्रपर्वतान्दारयन्तींगता–गंगेत्युच्येते।।
–वराह पुराण 82/1
104. ब्रह्म पुराण 73/68–69
105. सर्वत्र सुलभा गंगात्रिषुरस्थानेषु दुर्लभा। गंगाद्वारे प्रयागे च गंगासागरसंगमे।।– नारद पुराण, 40/26–27, गरूड़ पुराण 81/1–2
106. नारद पुराण, उ. 38/20–23, पद्म पुराण सृष्टि खण्ड 60–35
107. श्रीमद्भागवत गीता 10/31
108. नारद पुराण, उत्तर खण्ड 38/20–23
109. मार्कण्डेय पुराण, 43/119–20
110. मार्कण्डेय पुराण, 8/105 एवं 101/122–126, ब्रह्म पुरण 2/7/96–101
111. नारद पुराण, उत्तरखण्ड 38/60
112. विष्णु पुराण 2/8/120–121
113. नारद पुराण उत्तरखण्ड 39/24–30
114. पद्म पुराण 4/89/17, 19
115. नारद पुराण उत्तरखण्ड 57/62–63 एवं पद्म पुराण पाताल खण्ड 89/12–42, सृष्टि खण्ड 20/145–176
116. नारद पुराण उत्तरखण्ड 38/60, पद्म पुराण सृष्टि खण्ड 60/25–26
117. विष्णु पुराण 2/8–10, नारद पुराण उत्तरखण्ड 43/109 तथा पूर्व खण्ड 15/163
118. नारद पुराण उत्तरखण्ड 43/113–115, विष्णु पुराण 2/8/10
119. स्कन्द पुराण काशी खण्ड 27/80
120. स्कन्द पुराण, काशी खण्ड 27/129–131